[श्री तंगामणि]

खादी तथा हथकरघा उद्योगों का विकास मिल के कपड़े पर ३ नये पैसे प्रति गज़ के हिसाब से लिये गये उपकर के द्वारा किया जाता है। खादी के विकास के लिये ऋण की राशि बढ़ा दी गई है जबकि हथकरघे की राशि में बहुत कम बढ़ोत्तरी की गई है। सहकारी समितियों द्वारा अधिक ऋण मांगने पर भी और ऋण नहीं दिया गया जबकि खादी को बिना मांगे ही और अधिक ऋण देने की व्यवस्था कर दी गई। मैं खादी के विकास का विरोधी नहीं हूं परन्तु हमें हथकरघे को नष्ट करके खादी को नहीं बढ़ाना है।

मेरे कटौती प्रस्ताव संख्या ४१ तथा ४२ मांग संख्या ११७ पर हैं जो खाद्यान्नों के खरीदने के सम्बन्ध में है। अक्तूबर, १९५७ में मद्रास राज्य को ८,००० टन प्रति माह खाद्यान्न केन्द्र से कम मूल्यों पर मिलते थे। परन्तु अक्तूबर, १९५७ के पश्चात् से उनको केवल ४,००० टन खाद्यान्न ही दिये जा रहे हैं। ऐसा दक्षिण खण्ड बनाने के कारण किया गया। परन्तु मैं सरकार को बताना चाहता हूं कि दक्षिण खण्ड में चावल के इधर-उधर लेजाने के कारण भी मद्रास राज्य में केवल ५,००० टन चावल ही पहुंच सका है जैसा कि उपमंत्री जी ने कल मेरे प्रश्न के उत्तर में बताया।

इसके पश्चात् मैं मांग संख्या ८३ के सम्बन्ध में कुछ बताता हूं। इस पर मेरे कटौती प्रस्ताव संख्या ३७ तथा ३८ हैं। इनके द्वारा मैंने डाक तथा तार कर्मचारियों को दी गई अन्तरिम सहायता की ओर सरकार का ध्यान आकर्षित कराया है। यह सहायता बहुत कम है। वेतन आयोग ने ५ रुपये अन्तरिम सहायता केन्द्रीय सरकार के कर्मचारियों को दी परन्तु जैसा सब जानते हैं कुछ विभागातिरिक्त कर्मचारी डाक तथा तार के अधीन नहीं आते हैं, उनको केवल २ रुपये प्रति मास की अन्तरिम सहायता दी जा रही है। मेरा निवेदन है कि इस थोड़ी सी अन्तरिम सहायता से लोग संतुष्ट नहीं हो सकते और वेतन आयोग को इस सम्बन्ध में स्पष्ट निदेश देने चाहियें।

†**उपाध्यक्ष महोदय** : इस विषय पर अब बाद में चर्चा होगी।

राष्ट्रपति के अभिभाषण पर प्रस्ताव—(जारी)

†**उपाध्यक्ष महोदय** : अब प्रधान मंत्री राष्ट्रपति के अभिभाषण पर हुये वाद-विवाद का उत्तर देंगे।

†**प्रधान मंत्री तथा वैदेशिक-कार्य और वित्त मंत्री (श्री जवाहरलाल नेहरू)** : श्रीमान्, राष्ट्रपति के अभिभाषण पर गत दिनों में जो वाद-विवाद हुआ है उसमें कितने ही विषयों का उल्लेख हो चुका है और अब उन सब पर कुछ कहना [illegible] श्रीमान्, आपकी अनुमति से मैं कुछ थोड़े से महत्वपूर्ण मामलों पर ही कहूंगा और सामान्य रीति से ही उन सब पर अपने विचार प्रकट करूंगा।

जहां तक देश की सामान्य आर्थिक स्थिति का सम्बन्ध है मैं उसके सम्बन्ध में कुछ बताऊंगा। जैसा सभा को पता है आयव्ययक पर चर्चा के समय इस सत्र में बहस के और बहुत से अवसर मिलेंगे। संभवतया मैं पहले ही बता चुका हूं कि द्वितीय पंच वर्षीय योजना के बारे में एक ज्ञापन सभा पटल पर रखा जायेगा जिसमें बताया गया है कि हम क्या कर रहे हैं और क्या करना चाहते हैं। इस मामले पर आंशिक रूप से कुछ कहना ठीक नहीं है। अतः हम समझते हैं कि इस विषय पर पूरा ज्ञापन ही ठीक रहेगा। इन सब मामलों पर चर्चा की ही जायेगी अतः अब आंशिक रूप से कुछ बातें कहना ठीक नहीं होगा। फिर भी इस विषय पर मैं थोड़ी बातें कहूंगा।

---

†मूल अंग्रेजी में।

विरोधी दल वालों ने आलोचना की है कि राष्ट्रपति का अभिभाषण दूरदर्शिता पर आधारित नहीं है और उसमें यथार्थता का ध्यान नहीं रखा गया है तथा सरकार आत्मतुष्ट प्रतीत हो रही है। मैं तो नहीं समझता कि माननीय सदस्य इस सरकार के सदस्यों के बारे में, जो कि वास्तव में राष्ट्रपति को परामर्श देते हैं ऐसा कोई विचार रखते हैं या आत्मतुष्ट हैं। कोई भी सरकार, जिसे इतनी समस्याओं का सामना करना पड़ रहा हो, भला किस तरह से संतुष्ट हो कर बैठ सकती है। हो सकता है सरकार कभी-कभी गलती करे जैसा कि साधारणतया हो जाता है ।

किन्तु यदि कोई व्यक्ति अपने को पूर्ण रूप से संतुष्ट समझता है तो इससे प्रकट होता है कि उसमें कोई बड़ी खराबी है चाहे वह कोई भी हो ।

[अध्यक्ष महोदय पीठासीन हुए]

भला आत्म संतोष का क्या प्रश्न उठ सकता है जब कि हमने इतनी कठिनाइयों का सामना किया है और जब गत वर्षों में इतनी समस्यायें हमारे सामने आई हैं। बहुत सी कठिनाइयां तो ऐसी थीं जिनके लिये हम ज़िम्मेदार नहीं थे। किन्तु सरकार उन कठिनाइयों का सामना करने का प्रयास करती रही है—चाहे वह कठिनाइयां घरेलू हों या अन्तर्राष्ट्रीय। अतः मैं सभा को आश्वासन दिलाना चाहता हूं कि आत्म संतोष की भावना कहीं भी नहीं है। किन्तु आत्म संतोष न होना एक बात है तथा अनावश्यक रूप में घबराना, और देश के हरएक काम की निंदा करना दूसरी ऐसी बहुत सी बातें हैं जिन्हें लोग पसंद नहीं करते और जिनका हम मुकाबला करते हैं। मैं यह भी समझता हूं कि विरोधी दल का काम सामान्यतया त्रुटियों की ओर संकेत करना और निन्दा करना है। मैं इसकी शिकायत नहीं करता। किन्तु मैं सभा से यह प्रार्थना करता हूं कि इन मामलों पर किसी आत्म संतोष की भावना से विचार न किया जाये बल्कि सीधे तरीके और उचित दृष्टिकोण से विचार होना चाहिये। इसमें दलबंदी का भी कोई प्रश्न नहीं आना चाहिये। हमें संसद सदस्यों के नाते जो इस महान् भारत के लोगों का प्रतिनिधित्व करते हैं इस बात को देखना चाहिये कि किस प्रकार वर्तमान युग के इतिहास का निर्माण हो रहा है। हम लोग देश के इतिहास का निर्माण कर रहे हैं—चाहे वह अच्छा है या बुरा—इसका निर्णय तो आने वाली पीढ़ियां करेंगी। आज विश्व भी पहले से अधिक ज़ोर-शोर से इतिहास का निर्माण कर रहा है। अतः इसी दृष्टिकोण से हम लोगों को इन बड़ी बातों पर विचार करना चाहिये ।

मैं समझता हूं कि राष्ट्रपति के अभिभाषण में आत्म संतोष की भावना को प्रकट नहीं किया गया है बल्कि वास्तविकता दिखाई गई है। जो कुछ आशा के पहलू हैं उन्हें भी दिखाया गया है। मैं यह कह सकता हूं कि हाल ही में आशा की किरणों का उजाला हमारे देश में होने लगा है और हो रहा है—कोई भी व्यक्ति इस बात से इन्कार नहीं कर सकता। इसका यह अभिप्राय नहीं है कि हम लोग प्रसन्नता से बैठ जायें। किन्तु यह तो ठीक है कि हम जैसे निराशाजनक स्थिति का वर्णन करते हैं वैसे ही आशा के इन पहलुओं का उल्लेख भी करें ।

सामान्यता देश की आर्थिक व्यवस्था पहले वर्ष की अपेक्षा कहीं अच्छी है और पिछले वर्ष की अपेक्षा सरकार का स्थिति पर अच्छा काबू है। मुद्रा सफीति का दबाव कम हो गया है तथा हमारी रक्षित विदेशी मुद्रा का घटना भी कम हो गया है। गत वर्ष ऋण तथा आयात नीति के बारे में हमें यही समस्यायें तंग कर रहीं थीं। अब हमने इन चीजों की बागडोर कस कर पकड़ ली है और उधर वैदेशिक सहायता मिलने की आशा भी अधिक प्रतीत हो रही है। ये बातें महत्वपूर्ण हैं।

राष्ट्रपति के अभिभाषण में थोक मूल्यों के देशनांक का ज़िक्र किया गया है। कुछ माननीय सदस्यों ने इन आंकड़ों को ठीक नहीं माना है। मेरी यह बात समझ में नहीं आती; यह हो सकता है कि वे किसी

[श्री जवाहरलाल नेहरू]

और अवधि की कीमतों का निर्देश कर रहे हों। गत पांच महीनों में थोक चीजों के मूल्य देशनांक में ५ प्रतिशत की कमी हुई है। अनाज की कीमतें ८ प्रतिशत कम हुई हैं। चावल का देशनांक १११ से १०१ रह गया है। गेहूं का ९४ से ८६, ज्वार का १२६ से १०४ तथा बाजरे का १३७ से ११४। मैं यह नहीं कहता कि यह सब आश्चर्यजनक है किन्तु इन चीजों से पता चलता है कि सही कदम उठ रहे हैं और यह बात विशेषतः उस समय कितनी लाभदायक है जब कि हमें यह पता था कि गत वर्ष स्थिति ठीक इसके उलट थी। तात्पर्य यह हुआ कि न केवल गलत कदम रुके बल्कि ठीक कदम पड़ने आरंभ हो गवे हैं। इसका कारण यही है कि सरकार ने तब से अब तक ठीक नीतियों का अनुसरण किया है ।

यह बात मैं फिर दोहराना चाहता हूं कि इस प्रकार अनुकूल परिस्थिति में हमें आशा तो अवश्य करनी चाहिये किन्तु हमें कभी भी असावधान का या लापरवा होकर नहीं बैठना चाहिये ताकि कहीं ऐसा न हो कि ग़लत दिशा में कदम पड़ने कभी फिर आरंभ हो जायें।

आन्तरिक तथा बाह्य संसाधनों की समस्या तो बनी ही रहती है। बाह्य संसाधन हमें निर्यात से, ऋण से या विदेशों से सहायता के रूप में प्राप्त होते हैं। मैं समझता हूं कि हमारी निर्यात नीति भी अवश्य ही फल लायेगी। कितना फल लायेगी यह पहले से ही नहीं कहा जा सकता किन्तु यह बात गलत है जैसा कि कई माननीय सदस्यों ने कहा है कि हम इधर कोई ध्यान नहीं दे रहे। हम अपनी पूरी शक्ति से निर्यात के मामले पर ध्यान दे रहे हैं।

श्री नौशीर भरूचा ने कहा कि मैं यह आरोप लगाता हूं कि यह सरकार महत्वपूर्ण जानकारी नहीं दे रही है जो राष्ट्र के लिये अत्यावश्यक है। वह धन के बारे में कह रहे थे और बता रहे थे कि जो शेष रकम योजना के लिये चाहिये उसे कैसे पूरा किया जायेगा। मुझे तो यह पता नहीं कि हमने कौन-सी ऐसी महत्वपूर्ण जानकारी सभा को नहीं दी। मैं नहीं जानता कि सरकार को इससे क्या लाभ पहुंच सकता है। लोगों को तो यह जानना ही चाहिये कि उन्हें क्या करना है और स्थिति क्या है।

इसमें कठिनाई यह है—आप बाह्य सहायता का मामला लें। हम इसके सम्बन्ध में बातचीत के दौरान कोई निश्चित बात नहीं कह सकते। अतः हमें उस समय तक प्रतीक्षा करनी पड़ती है जब तक निश्चित बात तय न हो जाये। वास्तव में अनेकों तत्सम्बन्धी बातें सभा में बताई जाती रही हैं और वैसे भी बहुत सी बातें अखबारों में निकली हैं। इसे लोग जानते हैं।

इस बात को सभी मानेंगे कि इस प्रकार आंशिक जानकारी से पूरी तसवीर का पता नहीं चलता है। उस पूर्ण चित्र को सभा के समक्ष रखे जाने के लिये तैयार किया जा रहा है। हम सभा में इस बारे में एक व्योरात्मक विवरण रखेंगे जिसमें भोजन के बारे में सम्पूर्ण सूचना और संसाधनों की पूर्ति आदि का सारा उल्लेख होगा। जैसा कि मैं कह चुका हूं वर्तमान स्थिति गत वर्ष की अपेक्षा कहीं ज्यादा आशाजनक है। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि मैं भविष्य के बारे में दृढ़तापूर्वक विश्वास दिला रहा हूं। अभिप्राय केवल यह है कि इस समय स्थिति काफ़ी आशाजनक है। हमें दिखाई दे रहा है कि इस वर्ष हम योजना के मुख्य-मुख्य काम इच्छानुसार पूरे कर सकने में सफल हो जायेंगे। हम इन कार्यों की गति को मंद नहीं करेंगे। हमें आशा है कि अगले वर्ष भी स्थिति ठीक ही चलेगी। हम आगामी पांच सात वर्षों की भविष्य वाणी कर नहीं सकते। वे सब बातें हमारी नीति पर आन्तरिक संसाधनों तथा विदेशों से मिल सकने वाली सहायता पर आधारित हैं। इस मास में या मार्च में हम सभा के समक्ष इस विषय पर पूरा विवरण रखेंगे।

हमेशा की तरह सरकारी व्यवस्था में भ्रष्टाचार के बारे में भी काफ़ी कहा गया है। मैं सभा का अधिक समय लेना ही नहीं चाहता किन्तु मैं यह बताना चाहता हूं कि जो व्यवस्था इस प्रश्न को हल

करने के लिये हमने पिछले वर्ष से की है उससे हमें पर्याप्त सहायता मिली है। उसमें बराबर सुधार हो रहा है। यह तो कोई भी नहीं कह सकता कि दुनिया में कहीं भी भ्रष्टाचार नहीं होता। भ्रष्टाचार तो है किन्तु मेरे ख्याल में अन्य देशों की तुलना में यहां कहीं अधिक कम हो। मैं यहां इसकी सफ़ाई पेश नहीं करता। मैंने यह बात इस कारण कही है कि लोग कह देते हैं कि इस मामले में हम सबसे बढ़े हुए हैं। मैं तो ऐसा नहीं समझता। मैं समझता हूं कि दूसरे देशों की तुलना में हमारी स्थिति कहीं अच्छी है। मैं मानता हूं कि हमारे देश में भी भ्रष्टाचार है किन्तु हम उसे दूर करने का प्रत्येक संभव प्रयास कर रहे हैं। संगठन तथा प्रक्रिया विभाग तथा विशेष पुलिस संस्थापन आदि इस काम को सफलता से कर रहे हैं। जो कुछ उन्होंने किया है उसे मैंने देखा है। जो मामले उन्होंने हाथ में लिये और जो सफलता उन्हें मिली है उससे मैं प्रभावित हुआ हूं। रास्ते में कठिनाइयां अवश्य हैं। वास्तव में ठोस प्रमाण मिलने बड़े कठिन हो जाते हैं और उनके बिना न्यायालयों को संतुष्ट नहीं किया जा सकता। ऐसे मामलों में संदेह किया जा सकता या यह समझा जा सकता है कि नैतिकता की दृष्टि से अनुचित बात हुई है किन्तु वर्तमान विधि तथा नियमों की दृष्टि से ठोस प्रमाणों के बिना कार्यवाही करना सरल नहीं होता। फिर भी हमने पर्याप्त सफलता प्राप्त की है और हम प्रत्येक मंत्रालय पर यही ज़ोर डाल रहे हैं कि वह संगठन तथा प्रक्रिया विभाग से सम्पर्क रखे जिसका काम यह है कि विभागों में कार्याकुशलता और ईमानदारी बढ़े और भ्रष्टाचार बन्द हो।

एक बात का और ज़िक्र कर दूं हालांकि इस समय मैं इस विषय पर अधिक नहीं कहूंगा क्योंकि कल इस पर यहां चर्चा हो रही है। जीवन बीमा निगम के मामले को भ्रष्टाचार का उदाहरण बताया जाता है। मैंने इस प्रतिवेदन को बड़े ध्यान से पढ़ा है। मैंने इसमें ऐसा कोई आरोप नहीं देखा। कुछ अस्पष्ट से सन्देह इधर उधर जाहिर किये गये हैं किन्तु कोई स्पष्ट आरोप नहीं लगाया गया है।

संभवतया श्री ही० ना० मुकर्जी ने कहा कि इसमें पुनर्वास का कोई उल्लेख नहीं है और दंडकारण्य योजना का वर्णन नहीं है। यह ठीक है किन्तु उल्लेख तो अन्य कई महत्वपूर्ण बातों का भी इसमें नहीं है। जब तक इसके बारे में कोई नयी बात न कहनी हो तब तक इसके उल्लेख का कोई लाभ ही न था। इसका यह अर्थ नहीं कि पुनर्वास का प्रश्न महत्वपूर्ण नहीं है। यह बड़े महत्व का प्रश्न है। जो मामला लाखों लोगों के जीवन से सम्बन्ध रखता हो वह कैसे महत्वपूर्ण न हो। जहां तक योजना का सम्बन्ध है यह सब को पता है यह बड़ी भारी योजना है और इसके पूरा होने में समय लगेगा। पहले हम थोड़ा-थोड़ा काम करना चाहते हैं फिर ज्यादा तेजी से काम करेंगे।

जहां तक खाद्य स्थिति का सम्बन्ध है, हम यह नहीं कहते कि यह बिल्कुल ठीक है पर इतना जरूर है कि स्थिति संतोषजनक है क्योंकि हमने अनाज का कुछ स्टाक एकत्रित कर लिया है। वैसे स्थिति कठिन ही है। इसका वास्तविक हल तभी हो सकता है जब कि हमारे अत्यधिक उत्पादन के लक्ष्य पूरे हों। हम आशा करते हैं कि इस मामले में हम आत्म निर्भर हो जायेंगे। जैसे अभिभाषण में कहा गया है हम चाहते हैं कि देश आत्मनिर्भता के लक्ष्य की ओर अग्रसर हो। एकदम तो ऐसा नहीं हो सकता लेकिन यह सोचना गलत होगा कि हमें इस लक्ष्य को प्राप्त करने में बहुत अधिक समय लगेगा। किसी दृष्टि से भी देखते हुए मैं तो यही समझता हूं कि हम यह लक्ष्य पूरा कर सकते हैं। 'हम' से मेरा अभिप्राय भारतीय जनता तथा किसानों से है। हम इसे पूरा कर सकेंगे या नहीं यह बात वास्तव में कई चीजों पर आधारित है। प्रकृति का भी इसमें बड़ा हाथ है। किन्तु हमें निराश होकर काम नहीं करना चाहिये। हम इसे कर सकते हैं और करेंगे भी।

एक दूसरी बात यह कही गई थी कि सरकारी क्षेत्र ठीक तरह से नहीं चल रहा। मैं नहीं समझा कि इस आलोचना का भाव क्या है किन्तु यह सच है कि सरकारी क्षेत्र का ही व्यापक क्रम से विकास किया जा रहा है। इस्पात के बड़े बड़े कारखाने तथा मशीनें बनाने के कारखाने जो लग रहे हैं वह इसी क्षेत्र में लग रहे हैं। उसका ही बोझ तो हमें आज उठाना पड़ रहा है। भारी मशीनें इसी क्षेत्र के लिये संगाई जा रही हैं। इसके समक्ष गैर-सरकारी क्षेत्र का हिस्सा तो बहुत कम हो जाता है।

[श्री जवाहरलाल नेहरू]

कई माननीय सदस्यों ने आणविक शक्ति की चर्चा की और कहा कि हमें तुरन्त ही आणविक शक्ति स्टेशन स्थापित करने चाहियें। इतनी प्रगति एकदम से कभी नहीं की जा सकती। इसमें केवल रुपये का ही प्रश्न नहीं है बल्कि इस कार्य से पहले पर्याप्त तैयारी करने की भी आवश्यकता है। यह सच है कि राष्ट्रपति के अभिभाषण में इस बात का उल्लेख किया गया है। किन्तु इसका यह अभिप्राय नहीं कि हम उन्हें तुरन्त ही लगा सकते हैं। आणविक शक्ति आयोग के सभापति इस सम्बन्ध में बताते रहते हैं तथा इसके आर्थिक पहलू पर भी चर्चा करते रहे हैं क्योंकि वास्तव में आर्थिक पहलू ही अधिक महत्वपूर्ण है। कारखाना तो बन सकता है किन्तु यदि उस पर अत्यधिक व्यय हो तो क्या लाभ। यदि सामान्य तरीकों से उत्पन्न की जाने वाली शक्ति से आणविक शक्ति महंगी पड़ी तो हम उस पर धन व्यय नहीं करेंगे। यह एक ज़रूरी बात है।

हो सकता है भविष्य में विकास के कारण शक्ति का उत्पादन और सस्ता हो जाये किन्तु अब भी यह निश्चित है कि ऐसे स्थानों पर जो कोयला क्षेत्रों से दूर हैं वहां आणविक शक्ति से काम ठीक ढंग से चलाया जा सकता है। भारत में ऐसे कई क्षेत्र हैं। इस मामले पर विचार हुआ है। यह स्वाभाविक है कि हम पहल इसे एक स्थान पर ही आरंभ करेंगे। अनेक स्थानों पर तो काम एक साथ शुरू नहीं हो सकता। यह कहां होगा यह मैं नहीं कह सकता किन्तु पंजाब, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, दक्षिण भारत, राजस्थान, तथा बम्बई के बारे में विचार किया गया है। आप किसी भी क्षेत्र को नहीं चुन सकते। इस क्षेत्र में कई एक आवश्यकतायें पूरी होनी चाहियें, तब लाभ और हानि का अनुमान आप लगा सकते हैं। खैर इस मामले पर विचार हो रहा है।

श्री मुकर्जी ने कहा कि सहकारी खेती की ओर कोई प्रगति नहीं हो रही है। अंशतः यह ठीक है। मैं स्वयं इसी विचार का हूं कि हमें सहकारी खेती को बढ़ावा देना चाहिये। किन्तु यह तो स्पष्ट है कि इसे लोगों की इच्छा से किसानों की इच्छा से ही किया जा सकता है। आप एकदम से जाकर लोगों से नहीं कह सकते कि सहकारी खेती आरंभ की जाये। लोग इस तरह से कुछ भी नहीं समझेंगे और सफलता नहीं मिल सकती। आप लोगों को बाध्य नहीं कर सकते। उन्हें कोई भी बाध्य नहीं कर सकता। हमारी सरकार की बात तो छोड़िये तानाशाही सरकारें भी इसके लिये बाध्य नहीं कर सकतीं। ऐसा करने से अन्ततः उत्पादन में कमी हो जायेगी।

हम चाहते हैं कि सहकारिता विभिन्न सेवाओं में प्रसारित हो और फिर सहकारी खेती में उसे आरंभ किया जाये, जहां कहीं भी ऐसा करना संभव हो। अन्यथा आप इसे नहीं कर सकते। जहां स्थिति ठीक हो वहां आप सहकारी खेती आरम्भ कर सकते हैं, जैसे सरकार की कोई नई ज़मीन हो या ग्रामदान की ज़मीन हो। वहां स्थिति ठीक होती है और कोई झगड़े की बात नहीं होती। किन्तु मैं अधिक महत्व सेवा सम्बन्धी सहकारी संस्थाओं को देता हूं केवल ऋण सम्बन्धी सहकारी संस्थाओं को ही महत्वपूर्ण नहीं समझता।

जो कुछ मैं पहले कहता रहा हूं उसे मैं फिर दोहराता हूं कि सहकारिता का प्रश्न वास्तव में लोगों से सम्बद्ध है। मैं यह बताना चाहता हूं कि सरकार किसी पर इस चीज़ को लाद नहीं सकती। जिस सहकारी संस्था में सरकारी हाथ बहुत हो वह कोई सहकारी संस्था नहीं है। यह संस्था लोगों पर ही निर्भर करती है और उन्हीं के सहयोग से यह चल सकती है और इसी कारण मेरी राय में सहकारी संस्थायें कुछ छोटी होनी चाहियें।

अभी कल या परसों मैंने एक प्रसिद्ध विदेशी के विचार पढ़े थे जिसमें उसने बड़ी सहकारी संस्थाओं का पक्ष लेने वाले किसी संगठन के बारे में आलोचना की थी। वह सज्जन यहां की असैनिक सेवा में भी रहे थे। सम्भवतया उन्होंने ठीक कहा हो किन्तु वह बात मुझे ठीक नहीं लगी क्योंकि मैं तो चाहता हूं कि लोगों का समर्थन और सहयोग प्राप्त करके उनका विकास किया जाये, केवल सरकारी परिवर्तन करके अस्थायी परिणाम प्राप्त करने से कुछ नहीं होता।

लोगों के सहयोग और आत्म विश्वास द्वारा ही उनका विकास करना वास्तविक लक्ष्य है। इसीलिये मैं यह समझता हूं कि हमें छोटी सहकारी संस्थायें बनानी चाहिएं अर्थात् ग्राम सहकारी संस्था हो या दो ग्रामों की एक संस्था हो ताकि लोग एक दूसरे से परिचित हों और इकट्ठे मिलकर ठीक ढंग से काम कर सकें जैसे एक बड़ा परिवार करता है। फिर इन संस्थाओं को आपस में मिलाया जा सकता है। बीस, तीस, चालीस या पच्चास को मिलाकर बड़ी परिषदें बनाई जा सकती हैं। हमें तो सेवा सहकारी संस्थाओं पर जोर देना चाहिए। सहकारी संस्थायें उर्वरक, खाद, बीज या अनाज को बाज़ार में बेचने का काम कर सकती हैं। और भी कई चीज़ें हैं जो वे कर सकती हैं। सहकारी खेती की बात सदैव ध्यान में रखनी चाहिए और जहां भी लोग तैयार हों वह काम आरम्भ-कर देना चाहिए।

अब मैं सहकारी खेती की बात क्यों करता हूं? मैं यह नहीं कहता कि यह एक आदर्श है और इसलिये इसका अनुसरण किया जाये। यह तो है ही। मैं यह बिल्कुल नहीं कह सकता कि इस प्रकार की खेती देश के प्रत्येक भाग के लिये ठीक ही रहेगी। मैं नहीं जानता कि यह गेहूं वाले क्षेत्र या चावल वाले क्षेत्र में ठीक रहेगी या नहीं। लेकिन, इसमें सबसे मुख्य बात यह है कि हमारे देश में छोटी-छोटी जोतें हैं। इनमें से कई जोतें तो इतनी छोटी-छोटी हैं कि बहुत से लोग ऐसे हैं जिनके पास सिर्फ़ एक या दो एकड़ ज़मीन ही है। ज़ाहिर है कि इन दो एकड़ की जोतों में वे कोई बहुत अधिक प्रगति नहीं कर सकते। उनका सारा काम एक बहुत ही छोटे पैमाने पर चलता है। ऐसी हालत में यह जरूरी हो जाता है कि या तो एक ही किसी आदमी के पास बहुत बड़ा फार्म हो, या फिर एक बड़े खित्ते की देखभाल एक मिलेजुले तौर पर, सहकारी ढंग से की जाये, जिससे कि उनके पास संसाधन कुछ अधिक हों और वे बड़े पैमाने पर काम चला सकें। लेकिन आप यह भी नहीं चाहते कि एक ही आदमी के पास बहुत बड़े-बड़े फार्म हों।

इसीलिये, दो कारणों से मैं यह सोचता हूं कि मिलेजुले तौर पर, संयुक्त ढंग से खेती की जाये। पहला कारण तो मैं अभी बता चुका हूं। दूसरा यह है कि संयुक्त खेती का तरीक़ा सामाजिक संगठन का एक उच्चतर रूप है। उसमें सिर्फ़ खेती का ही सवाल नहीं है। उसकी तमाम कार्यवाहियों में सहकारिता की भावना पैदा होती जाती है, मिलेजुले ढंग से काम करने की भावना भी पैदा होती जाती है।

हमारे अपने देश की समस्यायें कुछ अपने ही ढंग की हैं। वे समस्यायें ऐसी हैं कि उनके बारे में हमें कभी आत्म-तुष्टि तो हो ही नहीं सकती। अभी कुछ दिन पहले ही राजभाषा की समस्या उठ खड़ी हुई थी। मैं उसकी चर्चा नहीं करता क्योंकि सभा उस पर चर्चा करेगी ही। सभा ने इसके लिये एक समिति नियुक्त कर दी है और वह, आपस में किसी समझौते पर पहुंचने के बाद, सभा के सामने अपने उपयुक्त प्रस्ताव रखेगी। मुझे इसमें किंचित भी सन्देह नहीं है कि सभा उन प्रस्तावों को सहर्ष स्वीकार कर लेगी।

इसका उल्लेख मैंने इसलिये किया है कि अन्य बातों के अलावा एक बात यह भी है कि दक्षिण भारत में, खास तौर पर मद्रास राज्य में, कुछ ऐसे भी लोग हैं जो एक स्वतन्त्र राज्य बनाने की बातें करने लगे हैं। वे अपने राज्य को भारत से पृथक कर लेने की बातें करने लगे हैं। इसे हास्यास्पद भी कहा जा सकता है, लेकिन मुट्ठीभर लोगों द्वारा ऐसी बातें करना एक बड़ी गम्भीर चीज़ है। ऐसी बातों से जाहिर होता है कि हमारे देश की एकता की जड़ें ज़रा भी गहरी नहीं हैं। ऐसी बातों की और भी प्रतिक्रियायें होती हैं। उनमें से एक तो यही है कि कुछ लोग एक स्वतन्त्र तामिल राज्य बनाने और उस स्वतन्त्र राज्य में श्रीलंका तक को शामिल करने की बातें चलाने लगे हैं। अखबारों से पता चलता है कि इसके लिए एक नया दल भी बनाया गया है।

ऐसी चीज़ के असर बड़े बुरे होते हैं। इस दल के बनने का समाचार प्रकाशित होते ही, श्रीलंका के समाचरपत्रों ने बड़े गुस्से से बहुत सी बातें लिखीं थीं, उन्होंने लिखा था : "यह तो ठीक है कि वर्तमान भारत सरकार ऐसा नहीं करेगी। लेकिन, कौन कह सकता है कि ऐसा नहीं हो सकता? और, अब इन

[श्री जवाहरलाल नेहरू]

लोगों की आंखें हमारे देश पर गड़ रही हैं।" इस प्रकार की गैर-जिम्मेदाराना बातों से, हमारे लिये और भी जटिल समस्यायें पैदा हो जाती हैं।

मैं अभी श्रीलंका गया था। मैंने वहां के लोगों से कहा था कि उनको ऐसा कोई भी भय नहीं रहना चाहिये कि भारत उनके महान् विशाल देश को हड़प करने की सोच रहा है। मैंने उन्हें बताया था कि भारत में कोई भी आदमी ऐसी बातें नहीं करता और यदि कोई करता भी है तो वह बकवास है। मैंने उन्हें बताया था कि उनका ऐसा कोई भी डर बिलकुल निराधार है। भारत कभी भी वैसा नहीं करेगा। यह इसलिये कि यह भारत देश के अपने हित में भी है कि हमारा पड़ौसी देश श्रीलंका स्वतन्त्र और मैत्रीपूर्ण देश बना रहे। यह सिर्फ भारत के अपने आदर्श की बात नहीं है, बल्कि यह उसके अपने हित में, और दोनों ही देशों के हितों में है। हम दुनियां में अपनी हंसी नहीं उड़वाना चाहते। इस प्रकार की बातें सामंती ज़माने की हैं, जब अपनी जमींदारी बढ़ाने या अपना क्षेत्र बढ़ाने की बातें हुआ करती थीं। आधुनिक युग में इस प्रकार की विचारधारा एक मखौल है। हम किसी दूसरे देश की एक इंच भूमि भी नहीं लेना चाहते। हां यह ज़रूर है कि जो चीज़ हमारी है वह हमारी होनी चाहिए, जैसे गोआ। श्रीलंका हो, या पाकिस्तान, हम उनकी एक इंच भूमि भी नहीं लेना चाहते। हमें पाकिस्तान से कोई वैर नहीं है और न हम उसका खात्मा ही करना चाहते हैं। ऐसी बातें करने वाले लोग देश की समस्याओं को और भी जटिल बनाते हैं। वे हमारा काम और भी मुश्किल बना देते हैं और हमारी सारी प्रगति रोक देते हैं।

†**श्री जयपाल सिंह** (रांची–पश्चिम–रक्षित–अनुसूचित आदिम जातियां) : क्या इसका अर्थ यह है कि हम चटगांव के पर्वतीय प्रदेश की मांग नहीं कर सकते ?

†**श्री जवाहरलाल नेहरू** : इसका उत्तर मैं यही दूंगा कि यदि चटगांव पर्वतीय प्रदेश की स्थिति में कभी कोई परिवर्तन होगा भी तो वह समझौते द्वारा ही किया जायेगा। विभाजन के समय ही, विभाजन कर्त्ताओं ने भी इस बात को माना था कि चटगांव पर्वतीय प्रदेश पाकिस्तान को नहीं दिया जाना चाहिए। हम भी मानते हैं कि वह एक गलत निर्णय था परन्तु अब यह एक तथ्य है। और अब यदि समझौते द्वारा ही वह प्रदेश हमें मिल जायें तो सबसे उत्तम रहेगा क्योंकि उस प्रदेश की जनता मुख्यतः बौद्ध ही है और वह पाकिस्तान में नहीं फबती। मैं किसी देश के किसी भाग को भारत में नहीं मिलाना चाहता।

अब वैदेशिक-कार्य को संक्षेप में लेता हूं। गत सैकड़ों वर्षों से वैदेशिक कार्य का अर्थ संसार की घटनाओं के प्रति यूरोपीय दृष्टिकोण ही समझा जाता रहा है। यह इसीलिये कि उस समय यूरोप ही संसार पर हावी था और वही संसार के अधिकांश भागों का नियंत्रण करता था। यूरोप सैनिक, आर्थिक तथा राजनीतिक रूप से अधिक शक्तिशाली था। इसी के फलस्वरूप उस यूरोपीय विचार धारा का जन्म हुआ था जो यूरोप को ही संसार का केन्द्र मान कर चलती थी; ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार कि १९ शताब्दी में इंगलैण्ड के रहने वाले लन्दन को ही सारे संसार का केन्द्र मानते थे। यह कुछ हद तक सही भी था।

वैदेशिक-कार्य के क्षेत्र में यूरोप को केन्द्र मानकर चलने वाली विचारधारा भी इसी प्रकार जन्मी थी। उस समय तक अमरीका अखाड़े में नहीं उतरा था। बाद में क्रमशः अमरीका भी विश्व की राजनीति में महत्वपूर्ण रूप से हाथ बटाने लगा। और दूसरे विश्व-युद्ध के बाद हम दुनिया का केन्द्र अमरीका को मानने लगे। हमारी विचारधारा भी वैसी ही बन गई। यूरोप का महत्व गौण हो गया। लेकिन, इधर सोवियत संघ का विकास हुआ। और यह इन दोनों विचारधाराओं से मेल नहीं खाता था। एक नई चीज़ आ खड़ी हुई कि विश्व का केन्द्र मास्को है।

लेकिन, पिछले दस-बारह वर्षों की कुछ घटनाओं के फलस्वरूप एशिया के कई देश स्वतन्त्र हो गये हैं। इससे एशिया में भी एक नया दृष्टिकोण पैदा हो गया है। लेकिन यूरोपीय विचार धारा का अभी भी

†मूल अंग्रेजी में।

हमारे ऊपर काफी प्रभाव है। काफ़ी हद तक हमारे सोचने का ढंग वही है। इसलिये कि हम उन्हीं, यूरोपीय, अमरीकी या कहिये रूसी राजनीतिक विचारधाराओं, के वातावरण में पले हैं। मैं राजनीतिक विचार धारा की बात कर रहा हूं, साम्यवाद की नहीं।

अब एशियाई राष्ट्रों के स्वतन्त्र होने पर, उनका विकास होने से संसार के एक एशियाई दृष्टिकोण का भी जन्म हो गया है। एक मोटे तौर पर उसे एशियाई दृष्टिकोण ही कहा जा सकता है। मैं यह नहीं कहता कि समूचे एशिया का एक ही दृष्टिकोण है। एशिया एक महाद्वीप है और उस महाद्वीप में कई प्रकार के दृष्टिकोण होना स्वाभाविक है। लेकिन यह अवश्य है कि वे एशियाई दृष्टिकोण यूरोप को केन्द्र मानकर चलने वाले या अन्य किसी दृष्टिकोण से भिन्न हैं। वास्तव में, मैं तो यह मानता हूं कि अन्त में सब से अधिक सही दृष्टिकोण वही होगा जो यूरोप, या अमरीका, या मास्को या एशिया को भी केन्द्र मानकर न चले, बल्कि सारे संसार को ही उचित रूप में देखे। ऐसा दृष्टिकोण विकसित किया जा सकता है।

लेकिन अपने मन में, इन सभी दृष्टिकोणों का सामंजस्य पैदा करना, इनको देखते हुए एक दृष्टिकोण बनाना काफ़ी कठिन है। उस सामंजस्यीकरण की प्रक्रिया काफ़ी कष्टसाध्य है। इस उचित विचारधारा को ठीक से न अपना पाने के कारण ही संसार में कई जगह कई प्रकार की कठिनाइयां पैदा हो रही हैं। कुछ लोग नये एशियाई दृष्टिकोण को उचित स्थान नहीं दे पा रहे हैं, वे एशिया की परिस्थितियों को अपने ही दृष्टिकोण से देखते हैं और एशियाई दृष्टिकोण के सम्बन्ध में अपनी नाराजी ज़ाहिर करते हैं।

उदाहरण के लिये, भारत को ही लीजिये। भारत किसी भी एक गुट में शामिल नहीं हुआ है, उसने किसी की नीति को नहीं अपनाया है। वे लोग तो यह मानकर चलते हैं कि अन्य देश अपना कोई दृष्टिकोण रख ही नहीं सकते। वे इस तथ्य को मानते ही नहीं कि कोई भी देश इतिहास और परम्पराओं के अलावा, भौगोलिक कारणों से भी अपना राजनीतिक या अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण बनाता है।

भारत को तो दिल्ली से ही सारे संसार को देखना पड़ता है। और, स्वाभाविक ही है कि इसके लिये भारत सब से पहले अपने पड़ोसी देशों को ही और उसके बाद उससे आगे के देशों की ओर देखेगा। उत्तरी ध्रुव के पास स्थित देश का दृष्टिकोण विषुवत्रेखा के समीप स्थित देश के दृष्टिकोण से भिन्न होगा ही। इसीलिये ये एक नया दृष्टिकोण भी पैदा हो गया है, जिसे हम एक प्रकार से एशियाई दृष्टिकोण कह सकते हैं। यह दृष्टिकोण यूरोपीय दृष्टिकोण से या अमरीकी या रूसी दृष्टिकोण से भिन्न है। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि यह दृष्टिकोण किसी के विरुद्ध हैं।

यह दृष्टिकोण किसी के प्रति वैर की भावना से प्रेरित नहीं है। हम यूरोपीय या अमरीकी दृष्टिकोण को नहीं मानते, इसका अर्थ यह नहीं होता कि हम यूरोप या अमरीका या मास्को के विरुद्ध हैं। इसका अर्थ केवल यही है कि हमारा दृष्टिकोण उनसे कुछ भिन्न है। यूरोप या अमरीका या अन्य किसी देश को केन्द्र मान कर चलने वाले दृष्टिकोण के बारे में एक बुनियादी तथ्य है जिसे मैं फिर दोराहना चाहता हूं। वह यह है कि उस दृष्टिकोण के तहत चीन के प्रति जो रुख अख्तियार किया गया है वह तर्क-संगत नहीं है। मैं सिद्धान्तों की बात नहीं कर रहा हूं। मैं तो यह कहता हूं कि चीन जैसा विशाल देश मौजूद है, पर उसको मान्यता न देना, उसे अनदेखा करना अयथार्थवादी, अवास्तविक लगता है। एशिया में घटित होने वाली कुछ अन्य घटनाओं के प्रति भी ऐसा ही अवास्तविक, अयथार्थवादी रुख अपनाया जा रहा है। इन घटनाओं को वे एशियाई दृष्टिकोण से देखने का प्रयास नहीं करते। वे इनको अपने-अपने विभिन्न दृष्टिकोणों से ही देखते हैं।

गत युद्ध के बाद से, एशिया में कई नई शक्तियां क्रमशः विकसित हुई हैं। ये नई शक्तियां अन्य देशों के परम्परागत दृष्टिकोणों से मल नहीं खातीं। हम उपनिवेशवाद के विरुद्ध नारे लगाते हैं। हम यह भलीभांति जानते हैं कि एशिया के कई देशों में, और यहां तक कि अफ्रीका के कई देशों में भी, उपनिवेशवाद

[श्री जवाहरलाल नेहरू]

में अब कोई बल, कोई सार नहीं रह गया है। यह एक अच्छी चीज है, और हमारा ख्याल है कि यह प्रवृत्ति और आगे बढ़ती जायेगी। हम यह भी अनुभव करते हैं परिवर्तन करने में कुछ समय लगना स्वाभाविक है और उसे एकाएक नहीं किया जा सकता।

लेकिन, फिर भी हमारे सामने यह एक सचाई ही है कि कुछ औपनिवेशिक शक्तियां अपने उपनिवेशों को छोड़ने के लिये तैयार नहीं होतीं। उसका सबसे ज्वलंत उदाहरण है – अलजीरिया, और कई अन्य देश भी। हमारा अपना दृष्टिकोण तो सदा यही रहा है कि फ्रांस आदि अन्य देशों के साथ हमारे सम्बन्ध मैत्रीपूर्ण रहें। हमने फ्रांस की संस्कृति और अन्य कई चीजों की भी बड़ी सराहना की है। और, पांडिचेरी के बारे में फ्रांस के साथ मैत्रीपूर्ण करार करके हमें प्रसन्नता हुई है। इस सम्बन्ध में खेद की बात यही है कि हमें अभी तक पांडिचेरी को विधि के अनुसार हस्तांतरित नहीं किया गया है। इसके लिये हम फ्रांस को बार-बार याद दिला रहे हैं। जब भी हम उन्हें याद दिलाते हैं तो उनकी ओर से यही कहा जाता है कि शीघ्र ही ऐसा किया जाने वाला है। फ्रांस की संस्कृति उच्च स्तर की है, उसके स्वाधीनता संग्रामों का एक बड़ा शानदार इतिहास है। इसलिये, जब हम यह सुनते हैं कि उसने अलजीरिया में क्या किया है तो हमें एक झटका सा लगता है।

अभी कुछ ही दिन पहले की एक विभीषिका-पूर्ण घटना है जिसे भुलाया नहीं जा सकता। भारतीय इतिहास में उसका उदाहरण केवल जलियां वाले बाग में ही मिल सकता है। वह घटना है फ्रांस के विमानों द्वारा अलजीरियाई सीमा के समीप ट्यूनिस के एक गांव ट्यूनिसिया पर बमबारी करना। उस गांव का नाम शायद साकियेत है। उस घटना का पूरा वृत्तांत फ्रांसीसी, अमरीकी और अंग्रेज पत्रकारों ने दिया है। रेड क्रास के लोगों ने भी उसका विवरण दिया है। उसके तथ्य सभी को अच्छी तरह से मालूम हैं। वे तथ्य इतने निर्मम और भीषण हैं कि यकायक उन पर विश्वास नहीं होता। उस घटना की विभीषिका इस बात में नहीं है कि कुछ सौ व्यक्ति उस बमबारी के शिकार बने और उनमें से २० या ३० मृत्यु के गाल में समा गये, बल्कि उसकी विभीषिका तो इस बात में है कि निरीह नागरिकों पर इस प्रकार बम बरसाये गये हैं। एशिया और अफ्रीका की जनता पर इसका बड़ा व्यापक प्रभाव पड़ना अनिवार्य है। वास्तव में यूरोप और अमरीका की जनता पर भी इसकी बड़ी गहरी प्रतिक्रिया हुई है। मैं इस सम्बन्ध में केवल यही कह सकता हूं कि यदि ऐसी ही नीति जारी रही और उसका अनुमोदन भी होता रहा, तो अफ्रीका को आगे चलकर और भी बड़ी-बड़ी विपत्तियों का सामना करना पड़ेगा।

सभा जानती ही है कि हाल ही में पश्चिमी एशिया में—तथाकथित मध्यपूर्व क्षेत्र में– कुछ बड़ी उल्लेखनीय घटनाएं हुई हैं। मिस्र और सीरिया ने अपना एक संघ बना लिया है, और शायद उसी की यह प्रतिक्रिया हुई है कि ईराक़ और जोरडान ने भी अपना एक फ़ेडरेशन बना लिया है। जहां तक कि मिस्र और सीरिया के संघ का सम्बन्ध है, यह तो पहले से स्पष्ट था कि यह एक लोकप्रिय संघ होगा, क्योंकि इन दोनों राष्ट्रों की जनता एक संघ बनाने की बड़ी इच्छुक थी और उसने बड़े शानदार ढंग से इसका स्वागत भी किया है। स्वाभाविक ही है कि यदि वहां की जनता इसकी इच्छुक थी, तो हम उसका स्वागत करते हैं और उनको अपनी बधाइयां भेजते हैं। लेकिन इस संघ के निर्माण के फलस्वरूप, कुछ ऐसी शक्तियां भी सक्रिय हो गई हैं, जिनके भविष्य के बारे में कुछ भी कहना कठिन है। यदि ईराक़ और जोरडान की जनता भी एक संघ बनाना चाहती है, तो बड़ी खुशी की बात है। लेकिन यदि यह केवल एक राजनीतिक चाल की तरह किया जा रहा है, एक राजनीतिक मोहरा चलाया जा रहा है, तो उसके परिणाम पता नहीं क्या होंगे।

इसका एक तीसरा पहलू भी है। इज़रायेल से भी कुछ अशुभ नारे उठने लगे हैं। अशुभ इसलिये, कि यदि मिस्र और सीरिया का संघ बनने के परिणामस्वरूप ही वे नारे उठाये गये हैं, तो कुछ यह खतरा भी

पैदा हो जाता है कि इज़रायेल शायद शीघ्रता से कोई गम्भीर क़दम उठा लेगा और वह बहुत ही बुरा होगा क्योंकि कोई नहीं जानता कि उसके क्या परिणाम निकलेंगे ।

आज के संसार की सबसे महत्वपूर्ण समस्या, सबसे बुनियादी प्रश्न निःशस्त्रीकरण और शीतयुद्ध का ही है । सबसे महत्वपूर्ण समस्या यही है कि दो बड़े-बड़े सैनिक समूहों के बीच परस्पर सम्बन्ध किस प्रकार के हैं । सभी अन्य चीज़ें इसी एक प्रश्न के आश्रित हैं । अब 'स्पुटनिक' और 'एक्सप्लोरर' के युग में, इस नये युग में यह बुनियादी समस्या और भी अधिक अविलम्बनीय बन गई है । क्योंकि अब एक ही ग़लत क़दम या किसी एक ही घटना से एक ऐसी विपत्ति आ सकती है जिससे बच निकलने की कोई राह ही नहीं रह जायेगी । इसीलिये, अब यह अविलम्बनीय हो गया है कि इस दिशा में कुछ किया जाये ।

अभी कल ही इंगलैण्ड के प्रधान मंत्री ने कहा था कि यह भी एक बड़ी बात है कि हमने शान्ति बनाए रखी है, फिर चाहे वह तनातनी से भरी शान्ति ही क्यों न हो । मैं मानता हूं कि ऐसी शान्ति भी युद्ध से कहीं अच्छी है । लेकिन, इसे कोई बड़े संतोष का विषय तो नहीं माना जा सकता । इसे शान्ति नहीं कहा जा सकता, हां यह अवश्य है कि युद्ध की भांति इसमें नर-संहार नहीं हो रहा है । इसलिये, निःशस्त्रीकरण और इन बड़े-बड़े सैनिक समूहों से सम्बन्धित बड़ी बड़ी विभिन्न समस्याओं को किसी प्रकार निबटाने का प्रश्न अब अत्यधिक महत्वपूर्ण बन गया है ।

संयुक्त राष्ट्र संघ में इस पर काफ़ी चर्चा हो चुकी है । अब वहां निःशस्त्रीकरण सम्बन्धी वार्ता भी समाप्त हो चुकी है । गत वर्ष इस वार्ता से बड़ी-बड़ी आशायें संजोई गई थीं, लेकिन अब उससे अधिक कोई प्रगति नहीं हो सकी है । २५ सदस्यों का एक निःशस्त्रीकरण आयोग स्थापित किया गया था । लेकिन निःशस्त्रीकरण आयोग से किसी भी फल की आशा करना ठीक नहीं होगा जब तक कि उसमें दो महान् शक्तियां भी सम्मिलित न हों । बुनियादी तौर पर अमरीका और सोवियत संघ का ही परस्पर कोई समझौता होना आवश्यक है । दूसरे देशों को छोड़ा तो नहीं जा सकता, लेकिन इन दो देशों के सहमत होने पर ही निःशस्त्रीकरण सम्भव हो सकता है । इसलिये, इन दो देशों के सहमत होने पर ही निःशस्त्रीकरण आयोग संतोषप्रद ढंग से कोई कार्य सम्पन्न कर सकेगा ।

आप जानते ही हैं कि शिखर सम्मेलन, उच्च स्तरीय बैठकों की भी कुछ बातें चल रही हैं । सोवियत संघ और अमरीका तथा अन्य देशों के प्रधानों के बीच काफ़ी पत्र-व्यवहार हुआ है । हम शिखर सम्मेलन का स्वागत करेंगे । उसे न करना या उसमें सम्मिलित होने से इन्कार करना हानिकारक होगा । लेकिन, यह बात भी स्पष्ट है कि आप बिना किसी आधार के, या बिना पहले से कुछ सोचे विचारे तो सम्मेलन नहीं कर सकते । इसलिये, शिखर सम्मेलन करने से पहले उसके लिये मानसिक तौर पर तैयारी भी करनी पड़ेगी । इसी के लिये यह सुझाव था कि शिखर सम्मेलन से पहले वैदेशिक-कार्य मंत्रियों की एक बैठक होनी चाहिए । हम उसके विरुद्ध नहीं हैं, लेकिन आज की परिस्थितियों को देखते हुए, हो सकता है कि वैदेशिक-कार्य मंत्रियों की बैठक से भी कोई फल न निकले, या समस्या पहले से भी अधिक जटिल हो जाये । इससे अन्य उच्च-स्तरीय बैठकों का द्वार बन्द हो सकता है । इसलिये इस पर विचार किया जाना चाहिये । मैं समझता हूं कि अनौपचारिक रूप में सभी जगह इसके सम्बन्ध में विचार किया जा रहा है और उच्चस्तरीय बैठक के लिये आधार बनाया जा रहा है । उच्चस्तरीय बैठक का संसार की जनता पर एक मनोवैज्ञानिक प्रभाव भी पड़ेगा । उसका अच्छा प्रभाव पड़ेगा । यह दूसरी बात है कि उस बैठक में वे एक-दूसरे से झगड़ बैठें, तब स्पष्ट है कि उसका बुरा प्रभाव पड़ेगा । वैदेशिक-कार्य मंत्रियों की बैठक का इतना व्यापक प्रभाव नहीं पड़ सकता । और संसार की आज सबसे बड़ी आवश्यकता यही है कि ऐसे मनोवैज्ञानिक परिवर्तन हों, तनाव की स्थिति में कुछ ढिलाई पैदा हो, जनता को भय से मुक्ति मिले । उच्चस्तरीय सम्मेलन द्वारा यह किया जा सकता है । उस सम्मेलन से पहले अनौपचारिक ढंग से वार्ता या बैठके, इत्यादि करके उसका आधार बनाया जा सकता है ।

[श्री जवाहरलाल नेहरू]

मेरा विश्वास है कि आज हर एक देश में, चाहे वह यूरोप का हो या अमरीका हो या सोवियत संघ, सभी देशों में जनता में एक चेतना सी पैदा हो गई है। सभी देशों की जनता ने, अब पुराने ढंग से सोचना छोड़ दिया है। अब सभी यह महसूस करने लगे हैं कि पुराने नारों को दोहराते रहने से कुछ भी हासिल नहीं होगा, सक्रियता से कुछ किया जाना चाहिए। आपके सामने इसके उदाहरण भी मौजूद हैं। इंगलैण्ड के प्रधान मंत्री ने हमारे यहां आने पर अनाक्रमण संधि की बातें कही थीं, हालांकि उन्होंने यह स्पष्ट नहीं किया था कि इससे उनका अर्थ क्या है, लेकिन इसकी बातें चलने से ही यह जाहिर है कि लोग पुरानी विचारधारा छोड़ते जा रहे हैं। और आप को यह भी मालूम है कि पोलैण्ड का एक प्रस्ताव है कि मध्य यूरोप के कई देशों को अणु-अस्त्रों से मुक्त रखा जाये, वहां अणु-अस्त्रों के अड्डे न बनाये जाएं। इससे समस्या बहुत अधिक तो हल नहीं होती। यदि पोलैण्ड, या चैकोस्लोवाकिया, या पूर्वी या पश्चिमी जर्मनी को अणु-अस्त्रों से मुक्त भी कर दिया जाये, तो सैनिक दृष्टिकोण से उसका कोई बड़ा महत्व नहीं होगा। लेकिन सबसे बड़े महत्व की बात यह है कि ऐसे कार्य से एक नया वातावरण पैदा होगा और आगे की कार्यवाही के लिये आधार बनेगा।

इंगलैण्ड में एक अमरीकी सज्जन, श्री कैन्नन ने भी कुछ क्षेत्रों को युद्ध से मुक्त रखने का प्रस्ताव रखा है। यह भी लगभग पोलैण्ड के प्रस्ताव की भांति ही है। पोलैण्ड के प्रस्ताव से वह इस बात में अवश्य कुछ आगे है कि उसमें उन क्षेत्रों से सभी प्रकार की सेनाओं को हटाने की बात भी कही गई है। इससे संसार की सभी समस्यायें सुलझ नहीं जायेंगी। यह तो ठीक है, लेकिन इससे यह तो पता चलता ही हैं कि अब लोगों को सोचने के तरीके में परिवर्तन हो रहा है।

यह सभी बड़ी आशाप्रद चीज़ें हैं। और, हम तो यथा सम्भव हर प्रकार से प्रत्येक उस कार्य में सहायता करने को तैयार रहते हैं जिससे कि किसी प्रकार का कोई निबटारा हो सके, या उसके लिये कोई सम्मेलन किया जा सके। हम हर एक बात में हस्तक्षेप नहीं करना चाहते। हम यह नहीं चाहते कि हमें भी इन सम्मेलनों में शरीक किया जाये। हमने स्पष्ट तौर पर कह दिया है कि जब तक सम्मेलन बुलाने वाले पक्ष सहमत न हों, हम किसी भी सम्मेलन में सम्मिलित होने नहीं जायेंगे। हां, यदि हमसे बन पड़ेगा तो हम उसमें पूरी-पूरी सहायता अवश्य करेंगे। इस प्रकार, एक ओर तो संसार के सामने खतरे बढ़ गये हैं, लेकिन दूसरी ओर संसार की जनता इन खतरों के प्रति अब अधिक जागरूक भी हो गई है। उसमें यह भावना भी पैदा हो गई है पुराने तरीक़ों को छोड़कर अब एक नये आधार पर इन खतरों को दूर करने का कोई प्रयास किया जाये। ये लक्षण बड़े शुभ हैं। और भविष्य की बात तो कोई कह ही नहीं सकता, लेकिन हां हम अपनी योग्यता के अनुसार भरसक प्रयत्न हो कर सकते हैं।

हम अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में अपना कार्य बराबर करते हैं, लेकिन सभी जानते हैं कि हम सभी प्रभावशाली ढंग से कार्य करते रह सकते हैं जबकि भारतीय जनता की शक्ति हमारे पीछे हो; हमें भारतीय जनता का समर्थन प्राप्त हो। वास्तव में, भारत में इन सभी विषयों पर दलगत भावनाओं के आधार पर विचार नहीं होता। लोगों में मतभेद तो हैं, लेकिन इन्हें दलगत प्रश्न नहीं बनाया जाता।

और फिर, बहुत अधिक सीमा तक हमारी सफलता इस बात पर निर्भर रहेगी कि हम स्वयं देश का शासन किस प्रकार चलाते हैं। यदि हम अपने देश में आपसी झगड़ों और लड़ाइयों में पड़ जाते हैं तो यह ज़रूरी है कि बाहर हमारी आवाज का बहुत कम महत्व हो जायेगा।

हमारी पंचवर्षीय योजना के सम्बन्ध में लोगों ने वित्तीय अंश पर चर्चा की है। यह बहुत महत्वपूर्ण बात है जिसकी उपेक्षा नहीं हो सकती। परन्तु अन्तिम विश्लेषण में केवल धन ही महत्वपूर्ण चीज़ नहीं है। देश के कार्य में जो मानवीय विश्वास और शक्ति लगाई जा सकती है वह अधिक महत्वपूर्ण है। इससे बड़े से बड़े कार्य सरल हो सकते हैं और वर्तमान कठिनाइयों पर काबू पाया जा सकता है। हम अपनी

पिछली कठिनाइयों में, चाहे वह स्वतन्त्रता संघर्ष हो या कुछ और, मानवीय विश्वास और शक्ति को ही हमेशा सामने रखते आये हैं। इस चीज़ को किसी पैमाने से तो मापा नहीं जा सकता यह तो अनुभव किया जा सकता है, और हम स्वयं इससे प्रभावित हो सकते हैं। मुझे पूर्ण विश्वास है कि हमारे देश में इस प्रकार की मानवीय शक्ति और विश्वास मौजूद हैं जिससे हम अपनी समस्त कठिनाइयों का सामना कर सकते हैं।

†**अध्यक्ष महोदय** : जैसा कि बहुत से सदस्यों का मत है, संशोधन संख्या १९६ को अलग मतदान के लिए प्रस्तुत किया जायेगा। इसलिये मैं इसे मतदान के लिये रखूंगा।

†**श्री त्यागी** (देहरादून) : मेरा एक औचित्य प्रश्न है। चूंकि इस संशोधन में बहुत से अलग-अलग मामलों का जिक्र है इसलिये इसके विभिन्न भागों को अलग-अलग मतदानों के लिए रखा जाये।

†**अध्यक्ष महोदय** : पहले माननीय सदस्य यह फ़ैसला कर लें कि वे किसी एक भाग को स्वीकार करते हैं तब मैं इन्हें अलग-अलग रखूंगा। सदन का एक भाग तो इस संशोधन के बिल्कुल विरोध में है। इसलिये मैं इकट्ठा ही इसे रखूंगा। परन्तु मैं देखता हूं कि इस संशोधन को प्रस्तुत ही नहीं किया गया है इसलिये इसे मतदान के लिये नहीं रखा जा सकता।

माननीय सदस्य कौन से संशोधन मतदान के लिये रखवाना चाहते हैं ?

†**श्री भा० कृ० गायकवाड़** : (नासिक) : संख्या १२१

†**श्री पाणिग्रही** (पुरी) : संख्या २९ और ३०

†**श्री नौशीर भरूचा** (पूर्व खानदेश) : संख्या १

†**श्री बि० दास गुप्त** (पुरुलिया) : संख्या ११० से ११२

†**एक माननीय सदस्य** : संख्या ६६, ६७ और ६८

†**श्री तंगामणि** (मदुरै) : संख्या ११५ और ११७

†**श्री जगदीश अवस्थी** (क्लिहौर) : संख्या ८०

†**श्री सुरेन्द्रनाथ द्विवेदी** (केन्द्रपाड़ा) : मैं संशोधन संख्या १ पर मतदान के लिये आग्रह करता हूं।

निम्नलिखित संशोधन मतदान के लिये रखा गया :

संशोधन संख्या	प्रस्तावक का नाम	संक्षिप्त विषय
१	श्री नौशीर भरूचा	निम्न बातों के सम्बन्ध में भयंकर आत्मनिर्भरता की भावना का प्रकट किया जाना : (क) खाद्य स्थिति (ख) द्वितीय योजना के लिये अपर्याप्त संसाधन (ग) विदेशी सहायता की अपर्याप्तता (घ) विदेशी विनिमय की संकटपूर्ण स्थिति (ङ) मूल्य स्तर

सभा सें मत विभाजन हुआ। पक्ष में ६२ तथा विपक्ष में २००।

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

---

†मूल अंग्रेजी में।